हमारी आजादी की कहानी

बिपन चन्द्र

अनुवाद

सलिल मिश्रा

चित्रांकन

इन्दिरा शर्मा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2552-4

पहला संस्करण : 1998 (*शक 1919*)

STORY OF OUR INDEPENDENCE (*Hindi*)

रु. 7.50

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

1

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन (या स्वतंत्रता संग्राम) का जन्म भारत में अंग्रेजी प्रभुत्व को चुनौती देने के लिए हुआ था। भारत में अंग्रेजी शासन की शुरुआत 1757 में बंगाल की विजय से हुई। धीरे धीरे अंग्रेजों ने सारे देश पर कब्जा कर लिया। अंग्रेजों ने भारतीय जनता के आर्थिक और राजनैतिक हितों को पूरी तरह से अपने स्वार्थों के अधीन कर लिया।

अंग्रेजी शासन की स्थापना के परिणामस्वरूप देश के प्रशासन और अर्थव्यवस्था में कई परिवर्तन आए। इन परिवर्तनों ने जनता में काफी रोष पैदा किया। उन्होंने अंग्रेजी शासन का जमकर विरोध किया। इसी का परिणाम था 1857 की क्रांति। जिसने अंग्रेजी शासन की जड़ें हिला दीं। लाखों किसानों, दस्तकारों और सिपाहियों ने इसमें भाग लिया। कई जमींदारों और नवाबों ने भी इसमें भाग लिया।

अंग्रेजी शासन ने भारत के अलग अलग भागों में रह रहे लाखों कबीले के लोगों के पारंपरिक जीवन और रहन-सहन को अस्त-व्यस्त कर दिया। परिणामस्वरूप उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ 19वीं शताब्दी में सैकड़ों लड़ाइयां लड़ीं। लेकिन इन लड़ाइयों में उनके हथियार होते थे—पत्थर, कुल्हाड़ी, भाले और तीर कमान। दूसरी तरफ अंग्रेज सेना आधुनिक हथियारों से लैस होती थी। इसलिए इन लड़ाइयों में कोई

बराबरी नहीं थी। अतः लाखों की जानें इन लड़ाइयों में गई।

अंग्रेजी शोषण का मुख्य शिकार थे भारतीय किसान। अंग्रेजों ने किसानों से जमीन पर लिए जाने वाले कर में वढ़ोतरी कर दी। जिसके कारण किसानों को अक्सर अपनी जमीन तक बेच देनी पड़ती थी। कई स्थानों पर अंग्रेजी शासन ने जमींदारी प्रथा को लागू किया। जमींदारों ने किसानों से भारी लगान वसूलना शुरू किया। लगान जमा करने के लिए अक्सर किसानों को साहूकार से भारी ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता था। 19वीं शताब्दी में इस शोषण के खिलाफ किसानों ने लगातार संघर्ष किए। 1857 के विद्रोह में भी किसानों का बहुत बड़ा योगदान था।

इन सारे विद्रोहों में भारतीय जनता ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। अलग अलग धर्मों और जातियों के लोगों ने एकता का परिचय देते हुए इन विद्रोहों में भाग लिया। लेकिन उन्हें अधिक सफलता प्राप्त न हो सकी। इसका एक कारण यह भी था कि उनकी अपनी कुछ कमजोरियां थीं। उनमें व्यापक तैयारी का अभाव था। भारत में अंग्रेजी शासन द्वारा लाए गए परिवर्तनों की भी उन्हें जानकारी कम थी। विद्रोहों के नेता पुराने राजाओं और व्यवस्थाओं से तो परिचित थे, लेकिन आधुनिक अंग्रेजी उपनिवेशवाद की उन्हें बिलकुल समझ नहीं थी। अंग्रेजी शासन का विरोध तो उन्होंने किया लेकिन अंग्रेजी शासन की जगह कैसी व्यवस्था को आना चाहिए यह समझ उनके पास नहीं थी। इन कमजोरियों की वजह से वे अंग्रेजी शासन को एक सशक्त चुनौती नहीं दे सके।

इन जन विद्रोहों की असफलताओं से हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि देश की स्वतंत्रता में उनका कोई योगदान नहीं था। इन विद्रोहों ने विदेशी शासन के खिलाफ स्थानीय संघर्ष की परंपरा को

स्थापित किया। लोगों को संघर्ष के लिए प्रेरित भी किया। इस कारण बाद में शुरू होने वाले भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में लोग सहज रूप से शामिल हो सके।

2

19वीं शताब्दी के अंत में व्यवस्थित रूप से राष्ट्रीय आंदोलन की आधारशिला रखी गई। यह कोई आसान काम न था। भारतीय जनता को आधुनिक राजनीति और राजनीतिक संगठन कैसे चलाए जाते हैं, इस बात की अधिक जानकारी नहीं थी। सरकार की खुली आलोचना के लिए लोग इकट्ठे हो सकते हैं, यह विचार भी नया ही था।

आधुनिक राजनीतिक चेतना धीरे धीरे फैलती गई। इसकी शुरुआत हुई 1860 और 1870 के दशकों में। राजनीतिक संगठन बनाने में देश के पढ़े लिखे लोगों ने पहल की। वे राजनीतिक रूप से भी सक्रिय थे। उन्होंने अखबार निकालकर राजनीति की समझ लोगों तक पहुंचाने की कोशिश की। 1880 के दशक के आते आते राजनीतिक रूप से जागरूक भारतीयों को लगने लगा कि एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन के निर्माण का समय आ गया है। ऐसे संगठन को बनाने और चलाने के लिए जिस तरह के अनुभव और आत्मविश्वास की जरूरत थी वह पिछले बीस वर्षों में उन्हें मिल चुका था। साथ ही उन्हें यह भी पता लग चुका था कि अंग्रेजी शासन का विरोध इकट्ठे होकर ही किया जा सकता है। इस संघर्ष को चलाने के लिए एक नई तरह की राजनीति की जरूरत थी। अतः 28 दिसंबर 1885 को बंबई शहर में देश के अलग अलग हिस्सों से आए

72 राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने एक नए संगठन, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की शुरुआत की। इस तरह से आजादी की लड़ाई की एक छोटी सी मगर व्यवस्थित शुरुआत हुई। कांग्रेस की स्थापना के समय मौजूद महत्वपूर्ण नेता थे—दादा भाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे, फिरोजशाह मेहता, के.टी.तेलंग, बदरुद्दीन तैयबजी, जी. सुब्रमण्य अय्यर, पी. आनंद चारुलू और डब्ल्यू.सी.बनर्जी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आनंद मोहन घोष और लता मोहन घोष भी जल्दी ही इस संगठन में शामिल हो गए।

राष्ट्रीय आंदोलन अभी किसी तरह के जन संघर्ष के लिए तैयार नहीं था। जनता द्वारा सक्रिय भागीदारी और प्रदर्शन की राजनीति आधुनिक राजनीति थी और भारत के लिए नई थी। इस समय तक राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य उद्देश्य था—जनता को राजनीति की शिक्षा देना और उन्हें राजनीतिक रूप से जागरूक बनाना। जनता को नहीं मालूम था कि राजनीति में उनकी क्या भूमिका होनी चाहिए। पुराने समय में राजनीति सिर्फ राजाओं के लिए होती थी। इसलिए जनता को यह बताना जरूरी था कि आधुनिक राजनीति पर राजाओं का ही अधिकार नहीं होता बल्कि जनता का भी उसमें दखल रहता है। वस्तुतः जनता ही आधुनिक राजनीति की निर्माता और कर्णधार है।

राष्ट्रवादी नेता जानते थे कि यह बात जनता तक पहुंचानी जरूरी है। तभी बड़े पैमाने पर आधुनिक जन आंदोलन संभव होगा। इसलिए इस समय लोगों को राजनीति के दायरे में लाना भर जरूरी था, ताकि उनमें अंग्रेजी शासन का विरोध करने का आत्मविश्वास पैदा हो सके। जस्टिस रानाडे का मानना था कि लोगों के अंदर एक राजनीतिक सोच पैदा करना बहुत जरूरी है।

इन नेताओं का एक और काम था—जनता की मांगों को सामने

लाना और उसके इर्द-गिर्द जनमत तैयार करना। यह काम अखिल भारतीय स्तर पर किया जाना था। उन्हें एक ऐसा कार्यक्रम तैयार करना था जिस पर विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों, जातियों और वर्गों की आपसी सहमति हो सके। इन्हीं मांगों ने आगे चलकर एक अखिल भारतीय राजनीति का आरंभ किया। इन नेताओं का मुख्य उद्देश्य था अंग्रेजी शासन के खिलाफ एक सर्व सम्मति की राजनीति पैदा करना। धर्म, जाति और क्षेत्र विशेष के आधार पर कोई अपील नहीं की जानी थी। इस तरह से आधुनिक मुद्दों के आधार पर आधुनिक राजनीति की आधारशिला रखी गई।

राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य एक अखिल भारतीय नेतृत्व की शुरुआत करना भी था। राष्ट्रीय आंदोलन को एक कारगर नेतृत्व की सख्त जरूरत थी। नेतृत्व के द्वारा तमाम राजनीतिक कार्यकर्ताओं को राजनीतिक प्रशिक्षण भी दिया जा सकता था।

सबसे पहले राष्ट्रवादी नेताओं ने अंग्रेजी शासन की आर्थिक आलोचना और समीक्षा तैयार की। साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक शासन सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं था। और न ही ब्रिटेन एक मात्र साम्राज्यवादी शक्ति था। 18वीं और 19वीं शताब्दी में एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के कई देश साम्राज्यवाद के शिकार हो चुके थे। यूरोप के विभिन्न देशों जैसे ब्रिटेन, पुर्तगाल, फ्रांस और स्पेन ने अपने आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए इन देशों पर अपना अधिकार जमाया था। इस तरह से उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद विश्वव्यापी व्यवस्था थी। भारत में औपनिवेशिक शासन ब्रिटेन ने स्थापित किया था। इस व्यवस्था की आलोचना की शुरुआत भारत से ही हुई।

भारत के राष्ट्रवादी नेता औपनिवेशिक शासन के चरित्र को अच्छी तरह से समझ सके। उनके अनुसार अंग्रेजी उपनिवेशवाद का सार था

भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन बनाना। भारत अंग्रेजी शासन के अंतर्गत दिन पर दिन और गरीब होता जा रहा था। यह गरीबी भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का परिणाम थी। और यह पिछड़ापन अंग्रेजी शासन के आर्थिक पिछड़ेपन का परिणाम था। अंग्रेजी शासन ने भारत के पारंपरिक उद्योगों को नष्ट कर दिया और आधुनिक औद्योगीकरण की प्रक्रिया को भी धक्का पहुंचाया। अंग्रेजी नीतियों द्वारा भारतीय कृषि का भी शोषण हुआ। भारत के आधुनिकीकरण में भी बाधा पहुंची। अंग्रेजी शासन के तहत भारतीय अर्थव्यवस्था का बुनियादी स्वरूप ही बदल गया।

राष्ट्रवादी नेताओं ने बढ़े हुए टैक्सों को देश की गरीबी के लिए जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने ऐसे टैक्सों को रद्द करने की मांग की जिनसे गरीबों पर बोझ पड़ता था (जैसे नमक टैक्स)। उन्होंने सरकारी खर्चे की भी कड़ी आलोचना की। सरकारी पैसे का एक बड़ा हिस्सा सेना और प्रशासन पर खर्च होता था। लेकिन लोगों की शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी जरूरतों की उपेक्षा की जाती थी। राष्ट्रवादियों ने इसका भी विरोध किया।

राष्ट्रवादी नेताओं के इस आर्थिक विश्लेषण ने एक व्यापक जनमत पैदा किया कि 'अंग्रेजी शासन भारत के शोषण पर आधारित है। यह भारत को गरीब और आर्थिक रूप से पिछड़ा बना रहा है।' इन विचारों को फैलाने का हमारे राष्ट्रवादी नेताओं ने भरसक प्रयास किया।

भारत जैसे विशाल देश पर अंग्रेज केवल सेना की मदद से ही शासन नहीं कर सकते थे। उन्हें भारतीयों का सहयोग भी चाहिए था। चाहे वह सहयोग कितना भी निष्क्रिय क्यों न हो। साथ ही यह भी जरूरी था कि भारतीय जन मानस उनका विरोध न करे। ऐसा अंग्रेजों

ने भारतीयों के बीच दो विचार फैला कर किया। पहला तो यह कि अंग्रेजी शासन भारतीयों के हित में है और अंग्रेजी शासन सभी भारतीयों के 'माई-बाप' के समान है। दूसरा यह कि भारतीय काफी कमजोर हैं और वे शक्तिशाली अंग्रेजी साम्राज्य का तख्ता नहीं पलट सकते।

शुरुआती राष्ट्रवादी नेताओं के आर्थिक विश्लेषण ने अपने सिद्धांतों द्वारा यह साबित कर दिया कि भारतीय जनता और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के हितों में एक बुनियादी अंतर है। अंग्रेजी उपनिवेशवाद की विस्तृत आलोचना हमारे प्रारंभिक नेताओं—जिन्हें नरमपंथी कहा जाता है—का सबसे महत्वपूर्ण योगदान था। अंग्रेजी शासन की इस नई समझ को पहले केवल पढ़े लिखे लोगों तक पहुंचाया गया। बाद में महात्मा गांधी के आने के बाद यह समझ व्यापक रूप से मजदूरों और किसानों तक भी पहुंच गई।

अंग्रेजी शासन पर इस समझ को विकसित करने में कई नेताओं का योगदान था। इनमें प्रमुख थे—महादेव गोविंद रानाडे, रोमेश चंद्र दत्त, जी.वी.जोशी, जी. सुब्रमण्य अय्यर और प्रतीश चंद्र रे। लेकिन जो नाम इस बात के साथ विशेष रूप से जुड़ा वह था दादा भाई नौरोजी का। दादा भाई नौरोजी पारसी थे। वे बंबई में गणित के अध्यापक थे। उन्होंने अपना सारा जीवन राष्ट्रीय आंदोलन की सेवा में लगा दिया था। उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन का संस्थापक और राष्ट्र का पितामह कहा जाता है। 1860 से 1917 में अपने निधन के समय तक रात दिन उन्होंने भारत की निर्धनता और 'हृदय विदारक, बदनसीब और शोक संतप्त' परिस्थिति पर चिंता व्यक्त की। उन्होंने भावपूर्ण तरीके से अपनी वेदना व्यक्त की, "हिंदुस्तानी कमजोर है और मर रहा है, वह काफी अपर्याप्त भोजन पर जिंदा है।" 1891 में उन्होंने घोषणा की कि अंग्रेजी शासन धीरे धीरे पर निश्चित रूप से भारत को नष्ट कर

रहा है। अंग्रेजों का यह दावा था कि उन्होंने भारत में कानून और शांति स्थापित की थी। उनके इस दावे पर तीखी प्रतिक्रिया करते हुए दादा भाई नौरोजी ने कहा, "एक पुरानी भारतीय कहावत है—'पीठ पर भले ही लात मारो पेट पर नहीं।' स्थानीय राजाओं के तहत लोगों का पेट सुरक्षित है, भले ही कभी पीठ पर लात पड़ जाती है। लेकिन अंग्रेजी शासन में आदमी की पीठ सुरक्षित है, चारों ओर शांति और अमन है। उसका सारा धन खींच लिया जाता है—शांतिपूर्वक, अदृश्य रूप से और होशियारी से। वह शांति से तड़पता है, शांति से भूखा रहता है और शांति से ही मर जाता है। यह सब पूरे कानूनी तौर पर होता है।"

राष्ट्रवादी नेताओं ने न सिर्फ अंग्रेजी शासन की आलोचना की बल्कि लोगों के सामने एक वैकल्पिक कार्यक्रम भी रखा। उनके अनुसार भारत की गरीबी का निदान आधुनिक विज्ञान और तकनीक पर आधारित कृषि विकास और औद्योगीकरण में था। आधुनिक उद्योग और कृषि न सिर्फ आर्थिक विकास और संपन्नता के लिए आवश्यक थे बल्कि जी.वी. जोशी के अनुसार, "वे एक बेहतर जीवन और सभ्यता के ऊंचे स्तर का भी परिचय देते हैं।"

हमारे राष्ट्रवादी नेता भारत को एक लोकतांत्रिक समाज और एक लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था बनाने के लिए दृढ़ संकल्प थे। वे जानते थे कि लोकतंत्र का विचार भारत के लिए नया है। इसीलिए उन्होंने लोकतंत्र को एक पौधे की तरह मानकर भारत की मिट्टी में उसका रोपण किया। उनकी राजनीति लोक शक्ति या जनसत्ता पर आधारित थी। दादा भाई नौरोजी ने कहा, "लोगों को यह समझना चाहिए कि जनता राजा को बनाती है, राजा जनता को नहीं।" शुरू से ही कांग्रेस का निर्माण लोकतांत्रिक ढर्रे पर किया गया। इसकी

गतिविधियां एक पार्लियामेंट की तरह होती थीं। प्रस्तावों पर खुली चर्चा होती और फिर बहुमत के आधार पर प्रस्ताव पास किए जाते। यह कहना सही ही होगा कि भारत में संसदीय प्रणाली और लोकतंत्र की जड़ें अंग्रेजी सरकार ने नहीं बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन ने डालीं।

शुरू के राष्ट्रवादी नेताओं ने जनता के बुनियादी अधिकारों के महत्व को अच्छी तरह से समझा, जैसे विचार व्यक्त करने का अधिकार, लिखने का अधिकार और संगठन बनाने का अधिकार। उन्होंने अंग्रेजी सरकार द्वारा इन मौलिक अधिकारों का दमन करने के हर प्रयास का विरोध किया। आगे आने वाले समय में इन मौलिक अधिकारों की लड़ाई आजादी की लड़ाई का एक अभिन्न अंग बन गई।

खासतौर से प्रेस की आजादी राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी। 1919 के बाद जब राष्ट्रीय आंदोलन ने एक विशाल जन आंदोलन का रूप ले लिया, तब जन सभाओं, जुलूसों और प्रदर्शनों ने आंदोलन में मुख्य भूमिका निभाई। लेकिन 1919 से पहले अखबार ही राजनीतिक प्रचार संघर्ष का मुख्य साधन होते थे। कांग्रेस की गतिविधियां और प्रस्ताव भी लोगों तक अखबारों के माध्यम से ही पहुंचते थे। अखबार देश के कोने कोने में पहुंचते और वहां सार्वजनिक रूप से पढ़े जाते थे। इन अखबारों ने अंग्रेजी सरकार के विरोधी की भूमिका भी निभाई।

शुरुआती राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा प्रेस की आजादी की लड़ाई का सबसे बेहतरीन उदाहरण या प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता बाल गंगाधर तिलक पर अंग्रेजी सरकार द्वारा चलाया गया मुकदमा। यह मुकदमा उनके मराठी अखबार केसरी में छपे उनके लेखों पर चलाया गया था। उन पर आरोप था कि उन्होंने लेखों और भाषणों द्वारा लोगों को सरकार

के विरुद्ध भड़काया है। 1897 में उन्हें अठारह महीने की सख्त सजा सुनाई गई। यह लोकमान्य तिलक के मौलिक अधिकारों का हनन था। सारे देश ने इसका जमकर विरोध किया। तिलक, जो तब तक सिर्फ महाराष्ट्र के ही बड़े नेता माने जाते थे, अब सारे देश में लोकप्रिय हो गए। लोगों ने उन्हें 'लोकमान्य' के पद से विभूषित किया। इस समय के बाद से वे लोकमान्य तिलक के नाम से जाने जाने लगे।

प्रशासन में और कानून बनाने में भारतीयों की हमारे राष्ट्रवादी नेताओं ने ज्यादा भागीदारी की मांग की। उन्होंने भारतीयों की इस भागीदारी के अभाव में किसी भी तरह के टैक्स को लागू करने का विरोध किया।

धीरे धीरे उन्होंने स्वराज्य की मांग रखी। स्वराज्य की इस मांग को गोपाल कृष्ण गोखले ने दिसंबर 1905 में कांग्रेस में अपने भाषण में उठाया। दादा भाई नौरोजी ने इस वात को और भी मजवूती के साथ रखा। 1905 में कांग्रेस को भेजे गए अपने संदेश में उन्होंने कहा, "भारत की समस्याओं और पीड़ाओं का एकमात्र इलाज स्वराज ही है।" 1906 में कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने औपचारिक रूप से स्वराज्य को राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य घोषित किया। स्वराज्य की उनकी परिभाषा थी—जनता की अपनी सरकार, जैसी कि ब्रिटेन में है।

शुरुआती राष्ट्रवादी नेता एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र निर्माण के लिए भी दृढ़ संकल्प थे। कांग्रेस ने शुरू से ही धर्म निरपेक्षता को अपना सिद्धांत बनाया। सभी धर्मों के लोग इसमें शामिल थे। राष्ट्रीय आंदोलन ने शुरू से ही समता और सामाजिक न्याय को स्वतंत्र भारत की आधारशिला के रूप में स्वीकार किया। उन्हें यह अहसास था कि राष्ट्रीय एकता प्राप्त किए बगैर विदेशी शासन का मुकाबला नहीं किया

जा सकता। साथ ही यह भी कि विदेशी शासन के खिलाफ सामूहिक संघर्ष से ही राष्ट्रीय भावना का विकास होगा।

शुरू के दौर में राष्ट्रीय आंदोलन की एक मुख्य कमजोरी यह थी कि इसका सामाजिक आधार बहुत ही सीमित था। इसका प्रभाव क्षेत्र मजदूरों और किसानों से बहुत दूर केवल मध्यम वर्ग तक ही सीमित था। लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उस समय राष्ट्रीय आंदोलन ने जनता के हितों को प्राथमिकता नहीं दी। राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यक्रम और नीतियां सिर्फ मध्यम वर्ग तक ही सीमित नहीं थीं बल्कि उन्होंने भारतीय समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व किया।

अंग्रेजी शासकों ने शुरू से ही राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति विरोधात्मक रवैया अपनाया। उन्होंने राष्ट्रवादी नेताओं को विश्वासघाती और देशद्रोही घोषित किया। उन्होंने कांग्रेस, इसके नेताओं और राष्ट्रवादी अखबारों की भरपूर आलोचना की। उनके अनुसार कांग्रेस "एक सूक्ष्मतम अल्प संख्यक लोगों का ही संगठन है।" 1888 में उन्होंने घोषणा की कि अंग्रेजी सरकार "कांग्रेस को बने रहने की इजाजत नहीं दे सकती।" 1890 में वाइसराय लार्ड कर्ज़न ने कहा, "कांग्रेस लड़खड़ाती हुई अपने विनाश की ओर बढ़ रही है और मेरी तीव्र इच्छा है कि कांग्रेस के शांतिपूर्ण निधन में पूरी मदद करूं।" 1903 में उन्होंने लिखा, "जब से मैं भारत आया हूं, मेरी कोशिश रही है कि कांग्रेस को पूरी तरह से नपुंसक बना दूं।" 1904 में लार्ड कर्ज़न ने कांग्रेस के अध्यक्ष और प्रतिनिधि मंडल से मिलने से इंकार कर दिया।

अंग्रेजी सरकार ने 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति से भी राष्ट्रीय आंदोलन से निपटने की कोशिश की। इस नीति का मतलब था धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र और वर्ग के आधार पर भारतीयों को एक

दूसरे से अलग करना। शुरू में अंग्रेजी सरकार ने यह तर्क दिया कि लोकतंत्र की मांग उच्च वर्गों के खिलाफ है और इस तरह से अंग्रेजी सरकार ने बड़े जमींदारों को राष्ट्रवादी मांगों के खिलाफ भड़काया। जब वे अपनी इस चाल में कामयाब नहीं हुए तो उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों को एक-दूसरे से अलग करने की कोशिश की।

अंग्रेजी सरकार ने बढ़ते हुए जनमत को दबाने का भी प्रयास किया। भाषण और प्रेस की आजादी पर रोक लगाने के लिए सरकार ने नए कानून बनाए और पुलिस को काफी अधिकार दिए। 1897 में सरकार ने लोकमान्य तिलक तथा अन्य कई संपादकों को गिरफ्तार किया और नाथ बंधुओं को देश निकाला दे दिया। 1898 में अंग्रेजी सरकार के किसी भी प्रकार के अपमान को कानूनी अपराध घोषित किया गया। अंग्रेजों के खिलाफ नफरत फैलाने पर पाबंदी लगा दी गई। भारतीय जनता को डराने की भी कोशिश की गई। 1890 में वाइसराय लार्ड एल्गिन ने घोषणा की, "भारत को तलवार के जोर पर जीता गया था और तलवार के जोर पर ही भारत पर नियंत्रण रखा जाएगा।"

3

1905 के बाद भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने एक नए दौर में प्रवेश किया। इसके नेतृत्व की बागडोर नए राष्ट्रवादी नेताओं ने संभाली। शुरुआती राष्ट्रवादी नेता नरम दल के नाम से जाने जाते थे। नए नेतृत्व को गरम दल के नाम से जाना गया।

(i) 19वीं शताब्दी के अंत तक राष्ट्रवादी स्वरूप में काफी पैनापन आ

गया था। भारतीयों को यह विश्वास हो गया था कि जब तक अंग्रेजी शासन के स्थान पर भारतीय सरकार नहीं आ जाती, भारत की प्रगति संभव नहीं।

लेकिन अंग्रेजी सरकार ने घोषित किया कि भारतीय लोग अपने देश का शासन चलाने के योग्य नहीं हैं और लोकतंत्र और स्वराज्य के लिए अनुपयुक्त हैं। इसलिए उनके अनुसार भारत का शासन चलाने के लिए अंग्रेजों का यहां होना बहुत जरूरी है। इस नई सोच के तहत अंग्रेजी सरकार ने जो थोड़े बहुत अधिकार भारतीयों के पास थे, उन्हें भी छीन लिया। अंग्रेजी सरकार ने नरम पंथी राष्ट्रवादियों की लगभग सभी मांगों को अस्वीकार कर दिया। इससे भारतीय नेता, खासतौर पर युवा पीढ़ी के लोग बहुत निराशा हुए।

सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों ने भी नई राष्ट्रवादी सोच को बल दिया। 19वीं शताब्दी के अंत तक भारतीय अर्थव्यवस्था का औपनिवेशिक शोषण अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया था। इस गरीबी और आर्थिक अनिश्चितता के कारण 1897 और 1900 के बीच अकालों में लगभग 70 लाख लोगों की जानें गईं।

आर्थिक कारणों के अलावा कुछ अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी गरम पंथी अतिवादी राष्ट्रवाद के विकास में योगदान दिया। विदेशों में हो रहे क्रांतिकारी आंदोलनों से एक बात स्पष्ट हो गई कि विदेशी शासन कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, एकता, संघर्ष और कुर्बानियों द्वारा उसे परास्त किया जा सकता है।

(ii) कुछ अतिवादी राष्ट्रवादियों का एक दल 19वीं शताब्दी में भी मौजूद था। इनमें सबसे प्रमुख थे लोकमान्य तिलक। उन्होंने अपना पूरा जीवन स्वतंत्रता संग्राम में लगा दिया। 1897 में जब उन पर देशद्रोह का मुकदमा चलाया गया तो उन्होंने अपने लेखों के लिए

अंग्रेजी सरकार से माफी मांगने से इंकार कर दिया। परिणामस्वरूप उन्हें 18 महीने की कड़ी सजा मिली। बाद में गांधी जी ने उनके बारे में कहा, ''लाखों अन्य देशवासियों की तरह मैं भी उनके अपार ज्ञान, अदम्य साहस, देश प्रेम, व्यक्तिगत जीवन में सादगी और पवित्रता और महान त्याग का प्रशंसक हूं। अपने समकालीन नेताओं की तुलना में उन्होंने अपने देशवासियों को सबसे अधिक प्रेरित किया। उन्होंने हमारे हृदयों में स्वराज की भावना का संचार किया। अंग्रेजी सरकार की बुराइयों का जितना ज्ञान लोकमान्य तिलक को था, उतना शायद उस समय के किसी और नेता को नहीं।'' उनके अलावा पंजाब से लाला लाजपत राय और बंगाल से बिपिन चंद्र पाल इस दौर के अन्य नेता थे। ये तीनों लोकप्रिय नेता लाल-बाल-पाल के नाम से प्रसिद्ध हुए। बंगाल से अरविंद घोष भी इसी दौर में उभर कर आए।

लोकमान्य तिलक ने 1907 में घोषणा की, ''हम नए नेतृत्व के लोग आपको यह अहसास दिलाना चाहते हैं कि आपका भविष्य पूरी तरह से आपके ही हाथों में है। अगर आप में आजादी के लिए इच्छा शक्ति है तो आप आजाद होकर रहेंगे।'' एकता में कितनी शक्ति है इस बात को उन्होंने आम जीवन का एक उदाहरण देकर समझाया, ''घास-फूस के एक गट्ठर में कोई शक्ति नहीं होती लेकिन उसी घास को इकट्ठा करके और मरोड़कर रस्सी बनाई जा सकती है जो मदमस्त हाथी को भी काबू में कर सकती है।''

गरम दल के इन राष्ट्रवादी विचारों ने लोगों के आत्मविश्वास को काफी बढ़ाया। उन्होंने लोगों को आत्म-निर्भरता के लिए प्रेरित किया। स्वामी विवेकानंद के इस संदेश से नरम दल के राष्ट्रवादी नेताओं के राजनीतिक विचारों को समझा जा सकता है, ''कमजोर होना दुनिया का सबसे बड़ा पाप है। कमजोरी मृत्यु के समान है। सत्य का यही

एक मंत्र है—जो भी चीज आप को शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक स्तर पर दुर्बल बनाती है, वह आपके लिए जहर है। उससे दूर रहें, वह जीवन और सत्य से रहित है।"

लोकमान्य तिलक ने लगातार शिक्षित भारतीयों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं से अपील की कि वे ज्यादा से ज्यादा लोगों को सक्रिय राजनीति में शामिल करें। 1907 में महान देशभक्त और नरमपंथी नेता गोपाल कृष्ण गोखले ने अतिवादी राष्ट्रवादियों को सलाह दी कि वे अंग्रेजी सरकार का बहुत ज्यादा विरोध न करें क्योंकि राष्ट्रीय आंदोलन अभी कमजोर है और अंग्रेजी सरकार मजबूत। गोखले को डर था कि अधिक विरोध करने पर सरकार आंदोलन का दमन न कर दे। लोकमान्य तिलक ने गोखले की इस समझ से असहमति व्यक्त की और कहा कि सरकारी दमन से आंदोलन खत्म नहीं होगा बल्कि लोग अंग्रेजी साम्राज्यवाद को खत्म करने के लिए और भी दृढ़ संकल्प हो उठेंगे। अंग्रेजी सरकार ने अगर एक देशभक्त को खत्म किया तो उसकी जगह दस और देशभक्त पैदा हो जाएंगे।

तिलक राष्ट्रीय स्तर पर पहले नेता थे जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में मजदूरों और किसानों की महत्वपूर्ण भूमिका को पहचाना। उन्होंने मजदूरों और किसानों को सक्रिय राजनीति में लाने के प्रयास भी किए। किसान को उन्होंने भारत की आत्मा का दर्जा दिया और यहां तक कहा कि जब तक कांग्रेस किसानों के प्रति अपने उदासीन रवैये को दूर नहीं करेगी, तब तक स्वतंत्रता प्राप्ति असंभव है।

तिलक ने बंबई के मजदूरों के बीच भी सक्रिय रूप से राजनीतिक कार्य किया। इसी का परिणाम था कि जब 1908 में तिलक को छह साल की सजा दी गई, तब 80 कपड़ा मिलों के मजदूरों और रेल कर्मचारियों ने छह दिन की हड़ताल की। जब सरकार ने उन्हें जबरदस्ती

काम पर लाने के लिए पुलिस का सहारा लिया तो मजदूरों ने उसका भी विरोध किया। अंग्रेजी सरकार ने हड़ताल को दबाने के लिए सेना को बुलाया। सेना ने हड़तालियों पर गोलियां चलाईं। गोलीबारी में 16 मजदूर शहीद हुए और पचास से भी ज्यादा घायल।

गरम पंथी राष्ट्रवादी नेताओं ने बड़े पैमाने पर राजनीतिक संघर्ष और उसमें जनता की सक्रिय भागीदारी की तगड़ी वकालत की। साथ ही उन्होंने लोगों से यह भी अपील की कि प्रशासन चलाने में वे अंग्रेजी सरकार को किसी भी तरह की मदद न दें। इस तरह से उन्होंने अंग्रेजी प्रशासन और अंग्रेजी राजनीतिक संस्थाओं के बहिष्कार का नारा दिया।

बहिष्कार को परिभाषित करते हुए तिलक ने जनवरी 1907 में कहा, "हम टैक्स इकट्ठा करने में और शांति स्थापित करने में सरकार की कोई मदद नहीं करेंगे। हम भारत के बाहर लड़ाइयां लड़ने में सरकार की किसी तरह की कोई मदद नहीं करेंगे। हम प्रशासन चलाने में भी उनकी कोई मदद नहीं करेंगे। हम अपनी अदालतें खुद बनाएंगे और जब समय आएगा, तब हम टैक्स देना बंद कर देंगे।" बहिष्कार की यह परिभाषा देने के बाद तिलक ने लोगों से पूछा, "क्या आप सामूहिक रूप से यह सब कर सकते हैं ? अगर हां, तो कल से आप स्वतंत्र हो जाएंगे।"

गरम दल के नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम के लक्ष्य को भी काफी स्पष्ट शब्दों में सामने रखा। अरविंद घोष ने कहा, "राजनीतिक स्वतंत्रता किसी भी राष्ट्र के लिए उतनी ही आवश्यक है जितना किसी आदमी के लिए सांस लेना।" तिलक ने कहा, "स्वराज्य हमारा लक्ष्य है। हम अपने देश के प्रशासनिक ढांचे पर अपना नियंत्रण चाहते हैं।" 1908 में उन्होंने यह घोषणा की जो आगे चलकर काफी प्रसिद्ध हुई और जिसने लोगों को आजादी के लिए मतवाला बना दिया, "स्वराज्य

हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।" उन्होंने स्वराज्य को इन शब्दों में परिभाषित किया, "ऐसी सरकार जो जनता द्वारा चुनी गई हो और जो जनता की इच्छाओं के अनुसार काम करे।"

यहां पर यह ध्यान में रखना जरूरी है कि केवल तीन ही प्रश्न थे जिन पर गरम दल के नेताओं के नरम दल से मतभेद थे। ये थे जनता की आत्म-निर्भरता, संघर्षों में उनकी सक्रिय भूमिका और स्वतंत्रता के लक्ष्य की स्पष्ट घोषणा। अन्य राजनीतिक मसलों पर दोनों की समझ एक-सी ही थी। भारत के आर्थिक विकास, लोकतंत्र, नागरिक स्वतंत्रता, धर्म निरपेक्षता और सामाजिक न्याय के प्रश्न पर दोनों के विचार एक-से थे।

उदाहरण के लिए तिलक पहले नेता थे जिन्होंने स्त्रियों और पुरुषों के लिए वयस्क मताधिकार की वकालत की। नागरिक स्वतंत्रता के प्रश्न पर तिलक ने कहा, "प्रेस की आजादी और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता राष्ट्र के विकास के लिए अनिवार्य है।" उन्होंने यह भी कहा कि असली स्वराज का आधार गांव ही होगा।

(iii) अब राष्ट्रीय आंदोलन अपने विकास के अगले दौर में प्रवेश करने के लिए तैयार था। यह नया दौर था सक्रिय जन संघर्ष का। इस संघर्ष के लिए वातावरण तैयार तब हुआ जब अंग्रेजी सरकार ने 20 जुलाई 1905 को बंगाल के विभाजन का फैसला किया। बंगाल के विशाल सूबे को अब दो हिस्सों में बांट दिया गया। उन दिनों बंगाल के सूबे में आज का बंगला देश, आसाम, बिहार और उड़ीसा भी शामिल थे। विभाजित बंगाल के एक हिस्से में थे पूर्वी बंगाल और आसाम के 3.1 करोड़ लोग और दूसरे हिस्से में पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसा के 5.4 करोड़ लोग। इन 5.4 करोड़ लोगों में 1.8 करोड़ बंगाली थे और 3.6 करोड़ बिहारी और उड़िया। विभाजन का जो मुख्य कारण

अंग्रेजी सरकार ने बताया, वह था प्रशासनिक सुविधा। सरकार के अनुसार बंगाल का सूबा बहुत बड़ा था और एक बेहतर प्रशासन देने के लिए उसके विभाजन की जरूरत थी।

लेकिन बंगाल की जनता ने अंग्रेजी सरकार के इस तर्क को स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार यह बंगाल की जनता को एक दूसरे से अलग करने का षड्यंत्र था। बंगाल में राष्ट्रवाद अपने उभार पर था और बंगाल की जनता ने तर्क दिया था कि अगर यह विभाजन सिर्फ एक प्रशासनिक मसला था तब इस सूबे को बंगाली और गैर बंगाली (जैसे आसाम, बिहार और उड़ीसा) हिस्सों में भी बांटा जा सकता था। उसके लिए बंग्ला भाषी लोगों को बांटने की क्या आवश्यकता थी ?

बाद के ऐतिहासिक शोध से यह पता चलता है कि बंगाल की जनता का यह मत बिल्कुल सही था। अंग्रेजी सरकार के गृह सचिव रिजले ने 6 दिसंबर 1904 को अपने औपचारिक नोट में लिखा, "संगठित बंगाल काफी शक्तिशाली हो सकता है। विभाजन के बाद बंगाल की राजनीति अलग अलग दिशाओं में बंट जाएगी। कांग्रेसी नेता भी ऐसा ही महसूस करते हैं। उनका डर बिलकुल सही है। जो उनका डर है वही हमारी योजना का उद्देश्य है। हमारी योजना है अपने विरोधियों को बांट देना। जिससे हमारे विरोधी हमारे खिलाफ संगठित न हो सकें।"

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और बंगाल के राष्ट्रवादियों ने बंगाल विभाजन के फैसले को राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने की एक चाल के रूप में देखा। इसलिए उन्होंने इस फैसले का भरपूर विरोध किया और इसके खिलाफ बंगाल में एक विशाल आंदोलन संगठित किया। शुरू में विभाजन विरोधी आंदोलन का नेतृत्व सुरेन्द्र नाथ बनर्जी

और कृष्ण कुमार मित्र जैसे नरम पंथी नेताओं के हाथों में था। लेकिन बाद में नेतृत्व गरम दल के नेताओं जैसे बिपिन चंद्र पाल, अरविंद घोष और अश्वनि कुमार दत्त के हाथों में आ गया।

आंदोलन का उद्घाटन हुआ 7 अगस्त 1905 को जब कलकत्ता में विभाजन के विरोध में एक विशाल मीटिंग का आयोजन किया गया। फिर यहां से राजनीतिक कार्यकर्ता बंगाल के अलग अलग हिस्सों में फैल गए।

बंगाल विभाजन का निर्णय 16 अक्तूबर 1905 को लागू किया गया। कांग्रेस नेताओं ने उस दिन को शोक दिवस घोषित किया।

कुछ ही समय में एक नई तरह की राजनीतिक गतिविधि की शुरुआत हुई। सारे विदेशी सामान का बहिष्कार और केवल भारत में बने 'स्वदेशी' सामान का इस्तेमाल शुरू होने लगा। बंगाल भर में विदेशी सामानों को इकट्ठा करके उनकी होली जलाई गई। विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों पर धरना दिया गया। महिलाओं ने विदेशी कपड़ों और आभूषणों को पहनने से इंकार कर दिया। धोबियों ने विदेशी कपड़ों को धोने से मना कर दिया और मंदिरों में पुजारियों ने विदेशी चीनी वाले प्रसाद को देने से मना कर दिया।

धीरे धीरे राष्ट्रीय आंदोलन ने नरम पंथी राजनीति को छोड़कर एक जुझारू रूप ले लिया। आंदोलन के नेताओं ने अंग्रेजी शासन का कड़ा मुकाबला करने का निश्चय किया। उन्होंने मुकाबला करने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया। अंग्रेजी सरकार से असहयोग, सरकारी नौकरियों, अदालतों और स्कूल-कालेजों का बहिष्कार इस कार्यक्रम के अंग थे। नए नेतृत्व ने विदेशी शासन से आजादी का भी नारा दिया। इस तरह बंगाल विभाजन का मसला भारत के स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ गया।

स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज्य के नारे धीरे धीरे अन्य प्रांतों में भी पहुंचने लगे। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार अब अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित होने लगा। सारा देश एक ही तरह के विचारों और राजनीति के सूत्र में बंधने लगा। लोकमान्य तिलक इस काल के सबसे बड़े नेता के रूप में उभरे। वह इस आंदोलन को बंगाल के बाहर देश भर में ले गए, खासतौर से महाराष्ट्र में। लाला लाजपत राय और अजीत सिंह ने इस आंदोलन को पंजाब और उत्तर प्रदेश में फैलाया। सईद हैदर रज़ा ने दिल्ली में और चिदंबरम पिल्लै ने दक्षिण भारत में इस आंदोलन का नेतृत्व किया।

अंग्रेजी सरकार ने इस आंदोलन का जवाब दमन से दिया। सरकार ने सभाओं और प्रदर्शनों पर प्रतिबंध लगा दिया। तमाम अखबारों का दमन किया गया और उनके संपादकों के खिलाफ मुकदमे चलाए गए। कई राजनीतिक कार्यकर्ताओं को जेल में डाल दिया गया। पूर्वी बंगाल में 'वंदे मातरम' का नारा तक लगाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

छात्रों को दबाने के विशेष प्रयास किए गए। सरकारी आदेश जारी किए गए कि जिन स्कूलों-कालेजों के छात्र आंदोलन में हिस्सा लें, उनके खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाए। उनके अनुदान बंद कर देने के आदेश दिए गए। सरकार द्वारा उनकी मान्यता वापस लेने के आदेश भी दिए गए। ऐसे स्कूल-कालेजों के छात्रों की छात्रवृत्ति बंद कर दी गई। उन्हें सरकारी नौकरियों के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया। कई छात्रों को स्कूलों और कालेजों से निकाल दिया गया।

पंजाब में अंग्रेजी सरकार ने नहरों से सिंचाई के दाम बढ़ा दिए। इसके विरोध में किसानों ने सरकार के खिलाफ बगावत छेड़ दी। अंग्रेजी सरकार ने 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का इस्तेमाल करना

भी शुरू कर दिया। सरकार ने जाति, प्रांत और भाषा के आधार पर लोगों में फूट डालने की कोशिश की। लेकिन इन सबसे ज्यादा सरकार ने धर्म के आधार पर लोगों को बांटना चाहा। इस तरह से सरकार ने सांप्रदायिकता को सक्रिय रूप से बढ़ावा दिया। अपनी इस नीति में सरकार को सफलता भी मिली। इस नीति के परिणामस्वरूप 1906 के अंत में कुछ मुस्लिम जमींदारों और सेवा निवृत्त अधिकारियों ने मिलकर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की।

सरकार ने यह प्रचार भी किया कि बंगाल विभाजन से मुसलमानों को फायदा होगा क्योंकि पूर्वी प्रांत में उन्हें बहुमत मिल जाएगा। लेकिन इस प्रचार के बावजूद भी सरकार मुसलमानों को विभाजन विरोधी आंदोलनों से दूर नहीं रख सकी। प्रसिद्ध बैरिस्टर अब्दुल रसूल, लियाकत हुसैन और प्रमुख व्यवसायी गज़नवी ने आंदोलन में हिस्सा लिया। मौलाना अबुल कलाम आजाद भी एक सरकार विरोधी क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए।

तिलक की गिरफ्तारी और बिपिन चंद्र पाल और अरविंद घोष द्वारा राजनीति से संन्यास लेने के बाद आंदोलन अधिक समय तक नहीं चल सका।

सरकार द्वारा दबा दिए जाने के बावजूद स्वदेशी आंदोलन को असफल समझना गलत होगा। एक तरह से देखा जाए तो यह आंदोलन काफी सफल रहा क्योंकि इसने भारतीय राष्ट्रवाद को विकसित किया और आगे बढ़ाया। इसने लोगों को राजनीतिक रूप से जागरूक बनाया और उन्हें राजनीति में निर्भरता का पाठ पढ़ाया। इस आंदोलन के बाद लोगों की राजनीति में भागीदारी बढ़ गई। उनमें आत्मविश्वास और आत्म-निर्भरता का भी संचार हुआ। अंततः सरकार को राष्ट्रवादियों की मांग के आगे झुकना ही पड़ा। 1911 में बंगाल विभाजन के फैसले

को वापस ले लिया गया। पूर्वी और पश्चिमी बंगाल को इकट्ठा कर दिया गया। बिहार और उड़ीसा को विशाल बंगाल से निकालकर एक अलग प्रांत बना दिया गया। साथ ही कलकत्ता की जगह दिल्ली को देश की राजधानी बना दिया गया।

(iv) 1907 के बाद के वर्षों में एक सशक्त क्रांतिकारी उग्रवादी आंदोलन का भी उदय हुआ। इसमें पहल की नौजवानों ने, जिन्होंने व्यक्तिगत शौर्य का प्रदर्शन किया।

इन नौजवानों ने निश्चित किया कि सरकारी दमन का जवाब मुख्य सरकारी अधिकारियों की हत्या से देना चाहिए। कुछ अखबारों ने भी इनका समर्थन किया। नौजवान क्रांतिकारियों का मानना था कि ये हत्याएं लोगों को राष्ट्रवाद के लिए प्रेरित करेंगी। और सरकारी दमन से व्याप्त निराशा का वातावरण दूर हो जाएगा। अगर हत्या के प्रयास में क्रांतिकारी पकड़े भी गए तो भी उनके त्याग से लोगों को राष्ट्रवादी प्रेरणा मिलेगी।

1908 में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नाम के दो नौजवान क्रांतिकारियों ने एक घोड़ागाड़ी पर बम फेंका। उनका अंदाज था कि घोड़ागाड़ी में मुजफ्फरपुर का कुख्यात जज किंग फोर्ड सफर कर रहा है। लेकिन दुर्भाग्य से किंग फोर्ड की जगह दो अंग्रेज महिलाओं की जो गाड़ी में सफर कर रही थीं, मृत्यु हो गई। प्रफुल्ल चाकी ने अपने आपको गोली मार ली और खुदीराम बोस को पकड़ कर फांसी दे दी गई।

जल्दी ही क्रांतिकारियों की गुप्त संस्थाएं देश भर में फैल गईं। लेकिन धीरे धीरे उस क्रांतिकारिता की लहर देश में ठंडी पड़ गई। इसका एक मुख्य कारण यह था कि क्रांतिकारियों के पास जन समर्थन का अभाव था। जबकि यह सच था कि जड़ें काफी मजबूत थीं और

उसका मुकाबला एक सशक्त जन आंदोलन से ही किया जा सकता था।

(v) 1908 के बाद राष्ट्रीय आंदोलन कुछ ढीला पड़ने लगा। जनता को आंदोलन के नए दौर का इंतजार था। जून 1914 में पहले विश्वयुद्ध की शुरुआत हुई। भारतीयों को महसूस होने लगा कि संगठित होने का समय आ गया है। विश्वयुद्ध के दौरान कीमतें काफी बढ़ गई थीं और सरकार ने टैक्स भी बढ़ा दिए थे। इन सबसे भी परेशान होकर लोगों ने संगठित होने की ठान ली।

1915-16 में दो होम रूल लीगों की स्थापना से राष्ट्रीय आंदोलन का पुनरुत्थान हुआ। पहली होम रूल लीग के नेता थे लोकमान्य तिलक जिन्हें 1914 में जेल से रिहाई मिली थी। दूसरी होम रूल लीग की नेता थीं एक अंग्रेज महिला एनी बेसेन्ट। एनी बेसेन्ट भारतीय संस्कृति की बड़ी प्रशंसिका थीं। दोनों होमरूल लीगों ने एक-दूसरे का साथ दिया और मीटिंग, भाषणों, दौरों, परचों और कान्फ्रेंसों के द्वारा देश भर में प्रचार किया। परचे अंग्रेजी और भारतीय दोनों भाषाओं में लिखे जाते थे। उनकी सरकार से मुख्य मांग थी—युद्ध के समाप्त होने पर 'होमरूल' या स्वराज्य की प्राप्ति।

दोनों लीगों ने काफी काम किया और शीघ्र ही सारे देश में स्वराज्य के नारे लगने लगे। सरकार से होमरूल लीगों की बढ़ती हुई लोकप्रियता बर्दाश्त नहीं हुई। जून, 1917 में एनी बेसेन्ट गिरफ्तार कर ली गईं। उनकी गिरफ्तारी पर राष्ट्र भर में तीखी प्रतिक्रिया हुई और सरकार को मजबूर होकर सितंबर में उन्हें छोड़ देना पड़ा।

होमरूल लीग आंदोलन की मुख्य उपलब्धि यह थी कि इसने आगे आने वाले जन आंदोलनों के लिए तमाम कार्यकर्ताओं को बहुत जरूरी प्रशिक्षण दिया। होमरूल लीगों ने भारतीयों को स्वशासन के लिए

जागरूक भी किया।

(vi) विश्वयुद्ध के दौरान क्रांतिकारी आंदोलन ने एक बार फिर जोर पकड़ा। इस बार की क्रांतिकारी लहर भारत से बाहर सक्रिय थी। भारत में भी उग्रवादी क्रांतिकारिता की कुछ घटनाएं हुई। बंगाल में बाघा जतिन के नाम से प्रसिद्ध क्रांतिकारी जतिन मुखर्जी पुलिस के साथ लड़ाई में शहीद हुए।

भारत की सरहद के बाहर कई देशभक्त अंग्रेजी सरकार के खिलाफ एक सशस्त्र विद्रोह की योजना बना रहे थे। लाला हरदयाल, मोहम्मद बटकतुल्ला, सोहन सिंह भखना और करतार सिंह सराभा कुछ प्रमुख गदर नेता थे। गदर पार्टी राष्ट्रवादी तो थी ही, साथ ही धर्म निरपेक्षता के प्रति भी दृढ़ संकल्प थी।

जैसे ही 1914 में विश्वयुद्ध की शुरुआत हुई, गदर पार्टी ने अपने हजारों सदस्यों को भारत भेजना शुरू कर दिया। उनका उद्देश्य था सैनिकों और स्थानीय क्रांतिकारियों की मदद से अंग्रेजों के खिलाफ एक सशस्त्र विद्रोह करना। उनके प्रयास मुख्यतः पंजाब पर ही केंद्रित थे।

दुर्भाग्य से सरकार को उनकी योजना का पता चल गया और फरवरी 1915 में उनके खिलाफ कड़ी कार्रवाई की गई। सेना की विद्रोही टुकड़ियों को तोड़ दिया गया और पंजाब में गदर पार्टी के कई सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया। विद्रोह के 45 नेताओं को फांसी दे दी गई और 200 को जेल में लंबी सजा। गदर आंदोलन को पूरी तरह से दबा दिया गया। फिर भी देश के बाहर कई भारतीयों ने क्रांतिकारी गतिविधियां जारी रखीं। मैडम कामा, राजा महेन्द्र प्रताप, रास बिहारी बोस, मौलाना उबेदुल्लाह सिंधी, सरदार सिंह राणा और चंपकरमन पिल्लै ऐसे ही कुछ क्रांतिकारी थे।

4

राष्ट्रीय आंदोलन के अगले और निर्णायक दौर की शुरुआत 1919 में गांधी जी के नेतृत्व में हुई। इस दौर में गांधी जी का साथ कई महान नेताओं ने दिया। जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस, सरदार पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, राजेन्द्र प्रसाद और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी इसी दौर के मुख्य नेता थे।

(i) मोहनदास कर्मचंद गांधी ब्रिटेन में वकालत की पढ़ाई पूरी करने के बाद दक्षिण अफ्रीका में वकालत करने के लिए गए। उन दिनों अफ्रीका में कई भारतीय मजदूर और व्यापारी रहते थे।

गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ जो दुर्व्यवहार किया जाता था, उसके खिलाफ संघर्ष करने का फैसला किया। उनके आंदोलन ने सरकार को उनकी कई मांगें स्वीकार करने पर मजबूर कर दिया। 1893 से 1914 तक चलने वाले संघर्ष में गांधी जी ने असहयोग, अहिंसा और सत्याग्रह पर आधारित जन संघर्ष का परीक्षण किया। आगे आने वाले समय में राष्ट्रीय आंदोलन में इनका कारगर इस्तेमाल हुआ।

1915 में गांधी जी भारत लौटे। आने के बाद उन्होंने पहले एक साल तक भारत का भ्रमण किया। साथ ही उन्होंने भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप अपनी राजनीतिक पद्धतियों को ढालने का काम भी शुरू किया।

गांधी जी ने भारत में अपनी राजनीतिक गतिविधियों की शुरुआत 1917 में उत्तर बिहार में चंपारन नामक जगह से की। वहां पर उन्होंने नील की खेती में लगे हुए किसानों की लड़ाई बागान मालिकों के खिलाफ लड़ी। अगले साल उन्होंने गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों

के प्रशासन के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व किया। वहां अकाल की वजह से उस साल फसल नहीं हुई थी। लेकिन सरकार ने माल गुजारी कम करने से इंकार कर दिया। गांधी जी ने किसानों को सलाह दी कि जब तक सरकार उनकी मांगें स्वीकार न कर ले, वे सरकार को माल गुजारी न दें। अंत में सरकार ने उनकी मांगें स्वीकार कर लीं और केवल उन्हीं किसानों से माल गुजारी वसूल की जो उसे दे सकने की हालत में थे। 1917 में गांधी जी ने अहमदाबाद की कपड़ा मिल के मजदूरों की बेहतर मजदूरी के लिए संषर्घ का नेतृत्व किया।

इन तीन लड़ाइयों के द्वारा गांधी जी को भारतीय जनता के और अधिक नजदीक आने का अवसर मिला। इन्हीं लड़ाइयों में गांधी जी को राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी और सरदार पटेल जैसे देशभक्त नेताओं का भी साथ मिला।

गांधी जी के समय में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने विश्व इतिहास में सबसे विशाल जन आंदोलन का रूप धारण किया।

(ii) राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान् गांधी जी ने एक खास राजनीति का विकास और प्रयोग किया था।

गांधी जी को आम जनता की संघर्ष करने की क्षमता में अद्भुत श्रद्धा थी। 1942 में एक विदेशी पत्रकार ने उनसे पूछा कि वे कैसे इतने विशाल अंग्रेजी साम्राज्य को भारत छोड़ने पर मजबूर करेंगे। गांधी जी का उत्तर था, "लाखों करोड़ों मूक भारतीयों की शक्ति द्वारा।" आंदोलन में जनता की भूमिका और जनता से अपने खुद के संबंधों पर उन्होंने 1939 में कहा, "मेरी अपनी प्रतिष्ठा का कोई मतलब नहीं है। इसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व भी नहीं है। भारत की उन्नति या पतन उसकी करोड़ों संतानों की सामूहिक गतिविधियों में व्याप्त अच्छाइयों या बुराइयों से होगा। इस प्रक्रिया में व्यक्तियों का कोई

महत्व नहीं होता चाहे वे कितने भी बड़े क्यों न हों। उनका महत्व सिर्फ करोड़ों भारतीयों के प्रतिनिधि होने में है।"

राष्ट्रीय आंदोलन ने समाज में महिलाओं की स्थिति सुधारने का बीड़ा उठाया। परिणामस्वरूप महिलाओं ने बड़े पैमाने पर आंदोलन में भाग लिया।

इस नए संघर्ष के मुख्य पहलू थे सत्याग्रह और अंग्रेजी सरकार के साथ पूरी तरह से असहयोग।

सत्याग्रह सत्य और अहिंसा पर आधारित था। इसका मतलब यह था कि सत्याग्रही को किसी भी हाल में सत्य और अहिंसा का दामन नहीं छोड़ना था। उसे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसी भी ऐसे साधन का सहारा नहीं लेना था जिसे वह गलत समझता हो। इस संघर्ष में अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक सच्चे सत्याग्रही को जो भी कष्ट झेलना पड़ेगा उसे वह स्वेच्छा से झेलेगा। लेकिन संघर्ष के दौरान वह अपने विरोधी से नफरत नहीं करेगा। सत्याग्रही का मुख्य उद्देश्य अपने विरोधी का हृदय परिवर्तन करना होगा। अगर विरोधी के विचार बदल जाएंगे तो वह सत्याग्रही की न्यायोचित मांगों को ठीक से समझ सकेगा।

राष्ट्रीय आंदोलन में जन संघर्ष की गांधीवादी तकनीक का एक मुख्य हिस्सा था इसका अहिंसात्मक स्वरूप। अहिंसात्मक संघर्ष का एक फायदा यह भी था कि लाखों सामान्य स्त्री पुरुष बगैर किसी डर और झिझक के आंदोलन में भाग ले सकते थे। इसी वजह से राष्ट्रीय आंदोलन में जन संघर्ष सिर्फ कुछ दृढ़ संकल्प और निष्ठावान सत्याग्रहियों तक ही सीमित नहीं था बल्कि उसका एक व्यापक आधार भी था।

गांधी जी ने यह भी जोर दिया कि अहिंसा को कमजोरी नहीं

मान लेना चाहिए। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि अहिंसक होने के लिए कायरता की नहीं बल्कि वीरता की जरूरत होती है। उनके अनुसार केवल बहादुर और हिम्मत वाले लोग ही अहिंसक हो सकते हैं।

गांधी जी और उनके कई अनुयायियों के लिए अहिंसा एक सिद्धांत और गहरी श्रद्धा का प्रतीक था। लेकिन कई अन्य राष्ट्रवादी नेताओं के लिए यह एक रणनीति और राजनीतिक व्यावहारिकता का प्रश्न था। उनके लिए अहिंसात्मक संघर्ष विशेष परिस्थितियों में आंदोलन को आगे बढ़ाने का एक बेहतर तरीका था। जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस, मौलाना आजाद और कई अन्य नेताओं का यह मानना था कि भारत एक सशस्त्र आंदोलन के लिए तैयार नहीं था और भारतीयों के पास इतने हथियार भी नहीं थे। इसलिए उनके अनुसार अंग्रेजी शासन के खिलाफ एक हिंसक संघर्ष का कोई औचित्य नहीं था।

अहिंसक संघर्ष की एक नैतिक शक्ति भी थी। इससे निपटने में अंग्रेजी सरकार असमंजस में पड़ जाती थी। अगर सरकार अहिंसक आंदोलन को यथावत चलने दे, तो इससे सरकार की प्रतिष्ठा कम होती थी। गांधीवादी आंदोलन अहिंसक तो था लेकिन कानून तोड़ने में विश्वास रखता था। अगर उसे न रोका जाए तो कानून के रक्षक के रूप में सरकार की स्थिति बिगड़ सकती थी। लेकिन अगर सरकार ने आंदोलन को दबाने की कोशिश की (ऐसा पुलिस और सेना की मदद से हिंसा द्वारा ही संभव था) तो विश्व में उसकी छवि धूमिल होती थी। एक अहिंसक आंदोलन को हिंसक रूप से दबाना क्रूर और बर्बरतापूर्ण कार्य है। ऐसा करने में अंग्रेजी सरकार और ब्रिटेन का दुनिया की निगाहों में गिर जाने का खतरा था। इस तरह से अहिंसक आंदोलन को चाहे सरकार दबाए या न दबाए, दोनों ही तरह से उसका

नुकसान होता था।

गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन का एक मजबूत पहलू था लोगों के दिल और दिमाग से डर को निकाल देना। धीरे धीरे उनके दिमागों से अंग्रेजी शासन की शक्ति का भय कम होता गया। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार गांधी जी ने उन्हें पुरुषार्थ और निर्भरता से भर दिया था।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत जैसे विशाल देश पर सिर्फ शक्ति के आधार पर शासन करना संभव नहीं था। भारतीय समाज के कुछ हिस्सों में अंग्रेजी शासन के लिए स्वीकृति और समर्थन प्राप्त करना जरूरी था। यह स्वीकृति पाने के लिए उन्होंने भारतीय जनता में दो विचारों को फैलाया। पहला तो यह कि विदेशी होने के बावजूद अंग्रेजी सरकार भारतीयों की हितैषी और शुभचिंतक है और उन्हीं के हित में काम करती है। दूसरा विचार यह कि भारत में अंग्रेजी शासन स्थायी और अटूट है। इसको उखाड़ पाना भारतीय जनता के बस की बात नहीं। धीरे धीरे ये दोनों विचार भारतीय जनता के दिमागों में घर कर चुके थे। राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य उद्देश्य इन दोनों विचारों को जनता के दिमाग से निकाल देना था।

राष्ट्रीय आंदोलन ने अपने नरमपंथी दौर में ही पहले विचार को शिक्षित भारतीयों के दिमाग से सफलतापूर्वक निकाल दिया था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद द्वारा भारत के आर्थिक शोषण की विवेचना ने इस भ्रम का पर्दाफाश कर दिया था कि अंग्रेजी सरकार भारतीयों की हितैषी है। राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने भाषणों, गीतों, परचों, नाटकों और अखबारों के द्वारा इस विचार को शहरों, कस्बों और गांवों तक पहुंचाया।

रचनात्मक कार्यक्रम गांधीवादी राजनीति का एक अहम हिस्सा

था। रचनात्मक कार्यक्रम का मतलब था खादी का प्रचार, कुटीर उद्योगों का विकास, हिंदू-मुस्लिम एकता, छुआछूत के खिलाफ संघर्ष, हरिजन उद्धार और शराब तथा विदेशी कपड़ों का बहिष्कार ! इन सबका मतलब था गांवों की ओर रुख करना।

इसके द्वारा गांधी जी तथा अन्य नेताओं का ग्रामीण भारत के साथ लगातार संपर्क बना रहता। जैसे ही जन संघर्ष की शुरुआत होती, ये सभी कार्यकर्ता आश्रम छोड़कर संघर्ष में लग जाते। संघर्ष के समय सरकार इन आश्रमों को गैर कानूनी घोषित कर देती थी।

राष्ट्रीय आंदोलन की शुरू से ही लोकतंत्र, नागरिक स्वतंत्रता और धर्म निरपेक्षता में पूरी निष्ठा थी। गांधीवादी दौर में भी यह निष्ठा बनी रही।

गांधी जी ने राजनीति को धर्म से अलग रखने की भी वकालत की। उन्होंने अंग्रेजी शासन का विरोध करने में कभी भी धर्म का इस्तेमाल नहीं किया। 1942 में उन्होंने घोषणा की, "धर्म एक व्यक्तिगत मामला है। इसका राजनीति में कोई स्थान नहीं।"

(iii) राष्ट्रीय आंदोलन के तीसरे और निर्णायक दौर की शुरुआत 1919 में हुई जब लोकप्रिय जन आंदोलन की शुरुआत की गई।

अंग्रेजी सरकार ने इस जन संघर्ष को दबाने की पूरी तैयारी कर ली। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सरकार ने कई क्रांतिकारियों को जेल में डाल दिया था और कुछ को फांसी की सजा भी दी थी। मौलाना आजाद को कैद कर लिया गया। मार्च 1919 में रौलेट एक्ट पास किया गया जिसके तहत सरकार किसी को भी बगैर मुकदमा चलाए जेल में रख सकती थी। इस तरह से अंग्रेजी सरकार ने संघर्ष से निपटने के लिए अपने आप को तैयार कर लिया।

रौलेट एक्ट पर देश भर में तीखी प्रतिक्रिया हुई। लोग उम्मीद

तो यह कह रहे थे कि युद्ध के बाद लोकतंत्र और स्वराज्य की शुरुआत होगी। लेकिन उन्हें मिला रौलेट एक्ट। लोगों में एक्ट के प्रति असंतोष और व्याकुलता बढ़ती गई।

गांधी जी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के अनुभव का भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल अच्छा इस्तेमाल किया। फरवरी 1919 में उन्होंने एक सत्याग्रह सभा की स्थापना की। मार्च-अप्रैल 1919 में उन्होंने रौलेट एक्ट पर एक देशव्यापी विरोध का आह्वान किया। सत्याग्रह सभा के सदस्यों ने शपथ ली कि वे रौलेट एक्ट का विरोध करेंगे और जेल जाएंगे।

अप्रैल 1919 तक सारा देश राजनीतिक रूप से सक्रिय हो उठा। हर जगह हड़ताल, प्रदर्शन और जुलूस निकलने लगे। सरकार ने इसका जवाब दमन से दिया। बंबई, कलकत्ता, दिल्ली, अहमदाबाद तथा अन्य शहरों में निहत्थी भीड़ पर लाठी और गोलियां बरसाईं।

पंजाब में तो सरकार का दमन चक्र अपनी क्रूरता की पराकाष्ठा पर पहुंच गया। 10 अप्रैल को जब सरकार ने दो लोकप्रिय नेताओं डा. सैफुद्दीन किचलू और डा. सत्यपाल को गिरफ्तार कर लिया तो पंजाब की जनता में काफी रोष फैला। इन गिरफ्तारियों के विरोध में 13 अप्रैल को अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक विशाल जन समूह इकट्ठा हुआ। जन समूह निहत्था था और विरोध शांतिपूर्ण ढंग से होना था। लेकिन अमृतसर के मिलिटरी कमांडर जनरल डायर ने जनता को सबक सिखाने की ठान ली। जलियांवाला बाग से बाहर निकलने के सभी रास्तों को बंद कर दिया गया। इसके बाद जनरल डायर ने अपने सैनिकों को निहत्थी भीड़ पर गोलियां चलाने का आदेश दिया। इस नृशंस हत्याकांड में लगभग 1000 लोग मारे गए और हजारों घायल हुए। पंजाब में सैनिक शासन घोषित कर दिया गया।

सारा देश जलियांवाला हत्याकांड की खबर सुनकर स्तब्ध रह गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विरोध में सरकार से मिली पदवी को लौटा दिया।

1920 और 1922 के दौरान लोगों की राजनीतिक गतिविधियां काफी बढ़ गईं। हजारों छात्रों ने स्कूल-कालेजों को छोड़ दिया और अध्यापकों ने त्याग पत्र दे दिए। सैकड़ों वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार करते हुए अपनी वकालतें छोड़ दीं। इनमें से मुख्य थे—देशबंधु चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, चक्रवर्ती राज गोपालाचारी, सरदार पटेल, टी. प्रकासम् और आसफ अली। कांग्रेस ने विधान परिषदों के चुनावों में भाग लेने से इंकार कर दिया। अधिकतर मतदाताओं ने वोट नहीं डाले। तमाम ग्रामीण इलाकों में सरकारी कर्मचारियों ने अपनी नौकरियों से इस्तीफे दे दिए। कई प्रांतों में किसानों ने लगान और माल गुजारी देने से इंकार कर दिया।

कई स्थानों पर विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। लोगों ने सूत कातना शुरू किया और खादी तो मानो आजादी के दीवानों की वर्दी बन गई। विदेशी कपड़ों और शराब की दुकानों का धरना भी काफी सफल रहा। देश के कई हिस्सों में सत्याग्रह आयोजित किया गया। लोगों ने शांतिपूर्ण ढंग से गिरफ्तारी दी। महिलाओं, फैक्टरी मजदूरों और किसानों ने बड़ी संख्या में आंदोलन में भाग लिया।

सरकार ने एक बार फिर बड़े पैमाने पर दमन का सहारा लिया। गांधी जी को छोड़कर सारे प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। कुल मिलाकर 30,000 से भी अधिक लोग गिरफ्तार हुए। इनमें अपने नवजात शिशुओं के साथ महिलाएं भी शामिल थीं।

1 फरवरी 1922 को गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने की घोषणा की। इसके तहत कुछ ही दिनों में सरकार को माल

गुजारी देना बंद कर देना था। लेकिन 4 फरवरी को एक दुखद घटना घटी। जिसके कारण गांधी जी ने आंदोलन वापस ले लिया। गोरखपुर जिले के चौरी चौरा गांव में पुलिस ने निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाई। इससे प्रदर्शनकारियों की भीड़ गुस्से से बेकाबू हो उठी। लगभग 3000 लोगों ने पुलिस थाने को घेर कर आग लगा दी। थाने के अंदर 22 पुलिसकर्मी आग में जलकर मर गए।

इस घटना का गांधी जी पर काफी गंभीर असर पड़ा। इससे पहले भी आंदोलन के दौरान देश के कुछ हिस्सों में हिंसा की छुटपुट वारदातें हुई थीं। गांधी जी को लगा कि लोग अभी पूरी तरह से अहिंसक जन संघर्ष के लिए तैयार नहीं थे। राष्ट्रीय आंदोलन का एक हिंसक रूप ले लेना गांधी जी के लिए चिंता का विषय था। इसलिए उन्होंने 12 फरवरी को जन आंदोलन वापस लेने की घोषणा कर दी।

उधर खिलाफत का मसला भी धीरे धीरे महत्वहीन हो चला था। तुर्की में महान और लोकप्रिय नेता मुस्तफा कमाल पाश ने सुलतान के खिलाफ एक सफल विद्रोह चलाया। अंग्रेजी सरकार ने इस परिस्थिति का फायदा उठाते हुए 10 मार्च 1922 को गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया। उन्हें 6 साल की सजा सुनाई गई।

असहयोग आंदोलन वापस लिए जाने से देश के नेताओं के बीच एक तीखा वाद-विवाद छिड़ गया। मुख्य सवाल यह था कि अब उन्हें क्या करना चाहिए ? इस सवाल के उनके सामने दो जवाब थे।

पहला जवाब दिया मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास जैसे नेताओं ने। इनका सुझाव था कि कांग्रेसी नेताओं को चुनाव लड़कर विधान परिषदों में प्रवेश करना चाहिए और वहां पर अंग्रेजी सरकार के अलोकतांत्रिक और दमनकारी चरित्र का पर्दाफाश करना चाहिए। इन नेताओं ने कांग्रेस के कार्यक्रम में परिवर्तन की मांग की थी इसलिए

ये 'परिवर्तनवादी' के नाम से जाने गए।

दूसरा जवाब दिया सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जैसे नेताओं ने। ये नेता 'अपरिवर्तनवादी' कहलाए गए। इन्होंने बहिष्कार के कांग्रेसी कार्यक्रम को जारी रखने की सलाह दी। परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी नेताओं के आपस में मतभेद तो थे, लेकिन उन्होंने अपने मतभेदों का राष्ट्रीय आंदोलन की एकता पर कोई असर नहीं पड़ने दिया। दोनों कांग्रेस के भीतर ही रहे और अपनी अपनी गतिविधियां करते हुए दोनों ने एक-दूसरे को यथा संभव सहयोग दिया। जब संघर्ष का समय आया तो दोनों एक बार फिर इकट्ठे हो गए।

1929 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की गई। इसका काम यह निश्चित करना था कि भारत को भविष्य में किस तरह के राजनीतिक सुधारों की जरूरत है। इस कमीशन के सारे सदस्य अंग्रेज थे। इसमें किसी भी भारतीय को शामिल नहीं किया गया था। भारतीय जनता और नेताओं के लिए यह बड़े अपमान का विषय था।

सभी राष्ट्रवादियों ने साइमन के बहिष्कार का निर्णय लिया। जब कमीशन भारत आई तो हड़ताल, काले झंडों और 'साइमन वापस जाओ' के नारों से इसका स्वागत किया गया। सरकार ने प्रदर्शनों का जवाब लाठी और गोली से दिया। इससे लोगों का गुस्सा और बढ़ा। वे संघर्ष के लिए तैयार हो उठे।

कांग्रेस ने अपना वार्षिक सम्मेलन दिसंबर 1929 में लाहौर में रखा। इसकी अध्यक्षता कर रहे थे चालीस वर्षीय जवाहरलाल नेहरू। इस ऐतिहासिक सत्र में कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वराज्य' को अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाने

का निर्णय भी सत्र में लिया गया। 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस घोषित किया गया। उस दिन देश भर में सभाएं हुईं। भारत के तिरंगे झंडे को लहराया गया। झंडे के नीचे लोगों ने शपथ ली कि 'इस अंग्रेजी शासन के अधीन रहना ईश्वर और मानवता के प्रति अपराध है।'

सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत 1930 में गांधी जी की प्रसिद्ध डांडी यात्रा से हुई। डांडी पहुंच कर उन्होंने नमक कानून का उल्लंघन करते हुए नमक बनाया। सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उन्होंने घोषणा की कि अब भारतीय लोग अंग्रेजों के बनाए हुए कानून की अवहेलना करेंगे।

लोगों ने जगह जगह पर नमक कानून को तोड़ना शुरू कर दिया। वे खुद ही नमक बनाते और उसे बेचते। लाखों लोगों ने सत्याग्रह शुरू कर दिया।

अंततः सरकार और कांग्रेस के बीच एक अस्थायी समझौता हुआ। इस समझौते के तहत लगभग 9 महीने के लिए आंदोलन को रोक दिया गया। उम्मीद यह की गई थी कि इस समय में अंग्रेजी सरकार स्वराज्य की मांग को स्वीकार कर लेगी। लेकिन ऐसा हुआ नहीं और जनवरी 1932 में एक बार फिर आंदोलन छेड़ दिया गया।

लेकिन कोई भी जन आंदोलन हमेशा के लिए सक्रिय नहीं रह सकता। लोगों की संघर्ष क्षमता धीरे धीरे कम हो जाती है और सरकार का दमन चक्र बढ़ता जाता है। हुआ भी यही। लोगों की ऊर्जा और गतिविधियां घटने लगीं। अंततः 1934 में गांधी जी ने आंदोलन को वापस ले लिया। लेकिन वे जनता के बड़े हिस्से तक राष्ट्रवाद के सिद्धांतों को ले जाने में सफल हुए थे।

(iv) गांधी जी और कांग्रेस के अलावा और भी ऐसे आंदोलन थे जिन्होंने राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ावा दिया। इनमें सबसे महत्वपूर्ण

था क्रांतिकारी उग्रवादियों का आंदोलन।

क्रांतिकारी उग्रवादी गतिविधियों की शुरुआत स्वदेशी आंदोलन के बाद हुई थी।

पुराने क्रांतिकारियों ने 1924 में हिंदुस्तान रिपब्लिकन संस्था की स्थापना की थी। इस संस्था का उद्देश्य था सरकार के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह। कुछ क्रांतिकारियों ने काकोरी (उ.प्र.) में एक ट्रेन लूटने की कोशिश की। इस ट्रेन में सरकारी खजाना रखा हुआ था। इसमें कई क्रांतिकारी गिरफ्तार हुए और उन्हें लंबी सजा मिली। रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला के साथ चार क्रांतिकारियों को फांसी दी गई।

कुछ नौजवान क्रांतिकारी समाजवादी विचारों से भी प्रभावित हुए। इन्होंने 1928 में अपनी पार्टी का नाम बदलकर 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन संस्था' रख लिया। चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, विजय कुमार सिन्हा और भगवती चरण मेहरा इसके कुछ प्रमुख नेता थे। धीरे धीरे उनका रुझान हिंसक गतिविधियों से हटकर जनता को संगठित करने की तरफ होने लगा।

लेकिन जब साइमन कमीशन विरोधी प्रदर्शन पर पुलिस ने निर्दयता से लाठियां बरसाईं तब प्रसिद्ध और वरिष्ठ नेता लाला लाजपत राय की लाठी के वार से मृत्यु हो गई। यह लाठी चार्ज करवाया था, अंग्रेज पुलिस अधिकारी साउन्डर्स ने। इससे क्रोधित होकर भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद और राजगुरु ने साउन्डर्स को मौत के घाट उतार दिया। अप्रैल 1929 में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केंद्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में एक बम फेंका। क्रांतिकारियों का इरादा किसी को मारने का नहीं था बल्कि असेम्बली के सांसदों के खिलाफ क्रोध प्रदर्शन करना था। इसीलिए बम फेंकने के बाद उन्होंने भागने की कोई कोशिश नहीं की और आत्म समर्पण कर दिया। जिससे वे

अदालत में देश को अपनी राजनीति के बारे में बता सकें।

बंगाल में भी क्रांतिकारी उग्रवादियों ने 1922 के बाद खुद को संगठित किया।

बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन की एक विशेषता इसमें नवयुवतियों की बड़े पैमाने पर भागीदारी थी। प्रीतिलता वाडेदार और कल्पना दत्त ऐसी ही दो क्रांतिकारी युवतियां थीं।

अंग्रेजी सरकार ने क्रांतिकारी गतिविधियों का क्रूरता से दमन किया। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी दे दी गई। बंगाल और उत्तर भारत में सैकड़ों क्रांतिकारियों को लंबी सजा दी गई। कइयों को काला पानी भेज दिया गया।

1934 तक क्रांतिकारी उग्रवादी आंदोलन समाप्त प्राय हो चुका था। चंद्रशेखर आजाद फरवरी 1931 में इलाहाबाद के एक पार्क में पुलिस की गोलियों से शहीद हुए। सूर्य सेन को 1933 में फांसी हुई। जेलों में क्रांतिकारियों ने एक बार फिर अपनी राजनीति पर पुनर्विचार करना शुरू किया। जेल से छूटने के बाद उनमें से कुछ गांधी जी के अनुयायी बन गए। कुछ और क्रांतिकारी कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियों में चले गए।

(v) 1920 और 1930 के दशकों की एक और विशेषता थी, समाजवादी विचारों का विकास और प्रसार। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यक्रम में एक जुझारूपन आया। जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस जैसे नेताओं ने आंदोलन की बागडोर अपने हाथों में ली। इसका परिणाम कांग्रेस के कार्यक्रम और नीतियों पर पड़ा।

1931 में कांग्रेस ने मौलिक अधिकारों और आर्थिक नीति पर अपना प्रस्ताव पास किया।

1936 में कांग्रेस ने अपने चुनावी घोषणा पत्र और कार्यक्रम को

औरं भी जुझारू बनाया। 1945 में कांग्रेस ने जमींदारी उन्मूलन और खेत पर किसान के नियंत्रण को अपना उद्देश्य घोषित किया। गांधी जी कांग्रेस के इस जुझारू कार्यक्रम से पूरी तरह सहमत थे।

(vi) 1937 में एक महत्वपूर्ण घटना हुई। सारे प्रांतों में चुनाव घोषित किए गए और कांग्रेस ने चुनाव लड़ने का फैसला किया। जनता ने चुनावों में कांग्रेस का भरपूर साथ दिया। कांग्रेस को अधिकतर प्रांतों में बहुमत प्राप्त हुआ। मद्रास, बंबई, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, आसाम और उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में कांग्रेस ने अपनी सरकार बनाई। केवल पंजाब, बंगाल और सिंध में ही गैर कांग्रेसी सरकारें बनीं। उन प्रांतीय सरकारों के पास ज्यादा शक्ति नहीं थी और वे अंग्रेजी प्रशासन को बदल भी नहीं सकती थीं। फिर भी कांग्रेसी सरकारों ने अपनी सीमित शक्ति का इस्तेमाल जनता की स्थिति में सुधार लाने के लिए किया।

(vii) सन 1939 में दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हुआ। इस युद्ध में एक तरफ थे ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका और सोवियत संघ। इन्हें मित्र देश कहा जाता था। दूसरी तरफ थे जर्मनी, इटली और जापान। ये धुरी देश कहलाए जाते थे। यह युद्ध दुनिया की लोकतांत्रिक और फासीवादी ताकतों के बीच था।

जैसे ही युद्ध की शुरुआत हुई, अंग्रेजी सरकार ने बिना भारतीय नेताओं की राय लिए युद्ध में भारत की भागीदारी की घोषणा कर दी। इससे कांग्रेसी नेताओं के सामने एक असमंजस उठ खड़ा हुआ। कांग्रेस अपनी विदेश नीति में जर्मनी और इटली के फासीवाद की विरोधी थी। फासीवाद देश सारी दुनिया को अपनी तानाशाही में रखना चाहते थे। ब्रिटेन और फ्रांस इस फासीवाद के खिलाफ लोकतंत्र और स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे थे। इसलिए फासीवाद के खिलाफ लोकतांत्रिक देशों

का समर्थन करना कांग्रेस के लिए स्वाभाविक था। लेकिन भारत की जनता तो खुद ही अंग्रेजी शासन की गुलामी में थी। फिर यह स्वतंत्रता और लोकतंत्र की लड़ाई में ब्रिटेन का साथ कैसे दे सकती थी ? यह राष्ट्रवादी नेताओं के सामने एक गंभीर समस्या थी। इतने महत्वपूर्ण युद्ध में वे तटस्थ भी नहीं रह सकते थे। इसलिए हमारे नेताओं ने कुछ शर्तों पर युद्ध में ब्रिटेन के समर्थन का निर्णय लिया। शर्त यह थी कि युद्ध के बाद ब्रिटेन भारत को भी स्वतंत्र कर देगा। अंग्रेजी सरकार ने इस तरह का कोई भी वादा करने से इंकार कर दिया। सरकार ने राष्ट्रवादियों को एक किनारे कर रजवाड़ों और सांप्रदायिक नेताओं की मदद ली।

इसके विरोध में सभी प्रांतों की कांग्रेस सरकारों ने इस्तीफा दे दिया। लेकिन सरकार के खिलाफ संघर्ष के नए दौर की शुरुआत नहीं की। ऐसा इसलिए था कि ब्रिटेन विश्वव्यापी स्तर पर चल रहे फासीवाद विरोधी संघर्ष में शामिल था। कांग्रेस इस संघर्ष को कमजोर नहीं करना चाहती थी। लेकिन कांग्रेस हाथ पर हाथ धरे भी नहीं बैठना चाहती थी। इसलिए अक्तूबर 1940 में कांग्रेस ने एक बहुत ही छोटे पैमाने पर सत्याग्रह की शुरुआत की।

सत्याग्रह के दौरान कांग्रेस ने अपने कार्यकताओं को काफी नियंत्रण में रखा था और उन्हें बड़े संघर्ष की आज्ञा नहीं दी थी। लेकिन इस नियंत्रण का सरकार के ऊपर कोई असर नहीं पड़ा। देश की राजनीतिक परिस्थिति बिगड़ने लगी। गांधी जी और कांग्रेस को लगने लगा कि सरकार के खिलाफ सख्त कदम उठाने का समय आ गया है।

8 अगस्त 1942 को कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक बंबई में हुई। और उसमें 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया गया। कांग्रेस ने

निर्णय लिया कि गांधी जी के नेतृत्व में अंग्रेजी सरकार के खिलाफ यह अहिंसक किंतु निर्णायक संघर्ष होगा। इस संघर्ष में अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए अहिंसक ढंग से मजबूर किया जाएगा। गांधी जी ने घोषणा की कि इस बार भारतीय लोग पूरी स्वतंत्रता से कम किसी भी चीज के लिए तैयार नहीं हैं। उन्होंने लोगों को 'करेंगे या मरेंगे' का नारा दिया। उन्होंने कहा, "हम या तो भारत को स्वतंत्र कराएंगे या इस प्रयास में अपनी जान दे देंगे। हम भारत को गुलाम देखने के लिए जिंदा नहीं रहेंगे।"

सरकार ने भी इस चुनौती से निपटने का फैसला कर लिया। इस आंदोलन में पहला वार सरकार की तरफ से हुआ। आंदोलन शुरू होने से पहले ही 9 अगस्त की सुबह गांधी जी और सारे बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और विश्वयुद्ध समाप्त होने तक उन्हें जेल में रखा गया।

इन गिरफ्तारियों पर लोगों की तीखी प्रतिक्रिया हुई। पूरे देश में क्रोध, अशांति और उत्तेजना की लहर दौड़ गई। अपने आप ही फैक्टरी और स्कूल-कालेजों में हड़तालें हो गईं। हर तरफ क्रोधित जनता के प्रदर्शन होने लगे। यह 1942 के विद्रोह की शुरुआत थी।

सरकार ने लाठी और बंदूक का सहारा लिया। लोगों ने पुलिस थानों, डाकघरों और रेलवे स्टेशनों पर हमला करना शुरू कर दिया। टेलीफोन के तार काट दिए। रेल की लाइनें तोड़ दीं। उनकी निगाहों में ये सब अंग्रेजी सरकार के प्रतीक थे। कई स्थानों पर लोगों ने क्रांति कर दी। अंग्रेज अधिकारियों को भगाकर कुछ समय के लिए अपनी सरकार स्थापित कर ली। पूर्वी उत्तर प्रदेश में बलिया, बंगाल में मिदनापुर जिले में तामलुक और महाराष्ट्र में सतारा में कुछ ऐसी ही सरकारें बनीं।

सरकार का दमन चक्र इस बार सबसे भयावह था। हवाई जहाजों से मशीनगनों द्वारा लोगों पर गोलियों की बरसात की गई। 10,000 से भी अधिक लोग मारे गए और लाखों लोग घायल हुए।

अंत में सरकार ने भारत छोड़ो आंदोलन को दबाने में सफलता पाई। लेकिन यह निश्चित हो गया कि भारतीय जनता स्वतंत्रता के लिए दृढ़ संकल्प थी। अब भारत पर भारतीयों की इच्छा के बिना शासन कर पाना असंभव था। अब भारत को स्वतंत्रता मिलकर रहेगी, इसमें कोई शक नहीं रह गया था।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक नया आयाम नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने जोड़ा। नेताजी 1941 में चुपके से भारत से निकलकर सिंगापुर पहुंचे। वहां उन्होंने जापान की मदद से ब्रिटेन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष की तैयारी की। नेताजी ने वहां रह रहे भारतीयों की मदद से अपनी आजाद हिंद फौज को मजबूत किया। नेताजी सुभाष बोस की रणनीति ब्रिटेन के विरोधियों की मदद से ब्रिटेन को हराकर भारत को स्वतंत्रता दिलाने की थी। वह आजाद हिंद फौज के कमांडर थे। उन्होंने अपने सैनिकों को 'जय हिंद' और 'दिल्ली चलो' का नारा दिया।

आजाद हिंद फौज ने जापानी सेना के साथ बर्मा से भारत की ओर कूच किया। आजाद हिंद फौज का इरादा भी भारत को स्वतंत्र कराने का था। लेकिन लड़ाई में जापान की और आजाद हिंद फौज की शिकस्त हुई। नेताजी सुभाष चंद्र बोस एक विमान दुर्घटना में शहीद हो गए।

(viii) अप्रैल 1945 में विश्वयुद्ध समाप्त हो गया। तुरंत ही किसी न किसी मसले को लेकर देश भर में अनेक लोकप्रिय आंदोलन शुरू हो गए। लोग स्वतंत्रता के लिए बेचैन हो रहे थे। यह बेचैनी कई तरह से सामने आई। जब भारतीय नेता जेल से छूटे, विशाल जन समूह
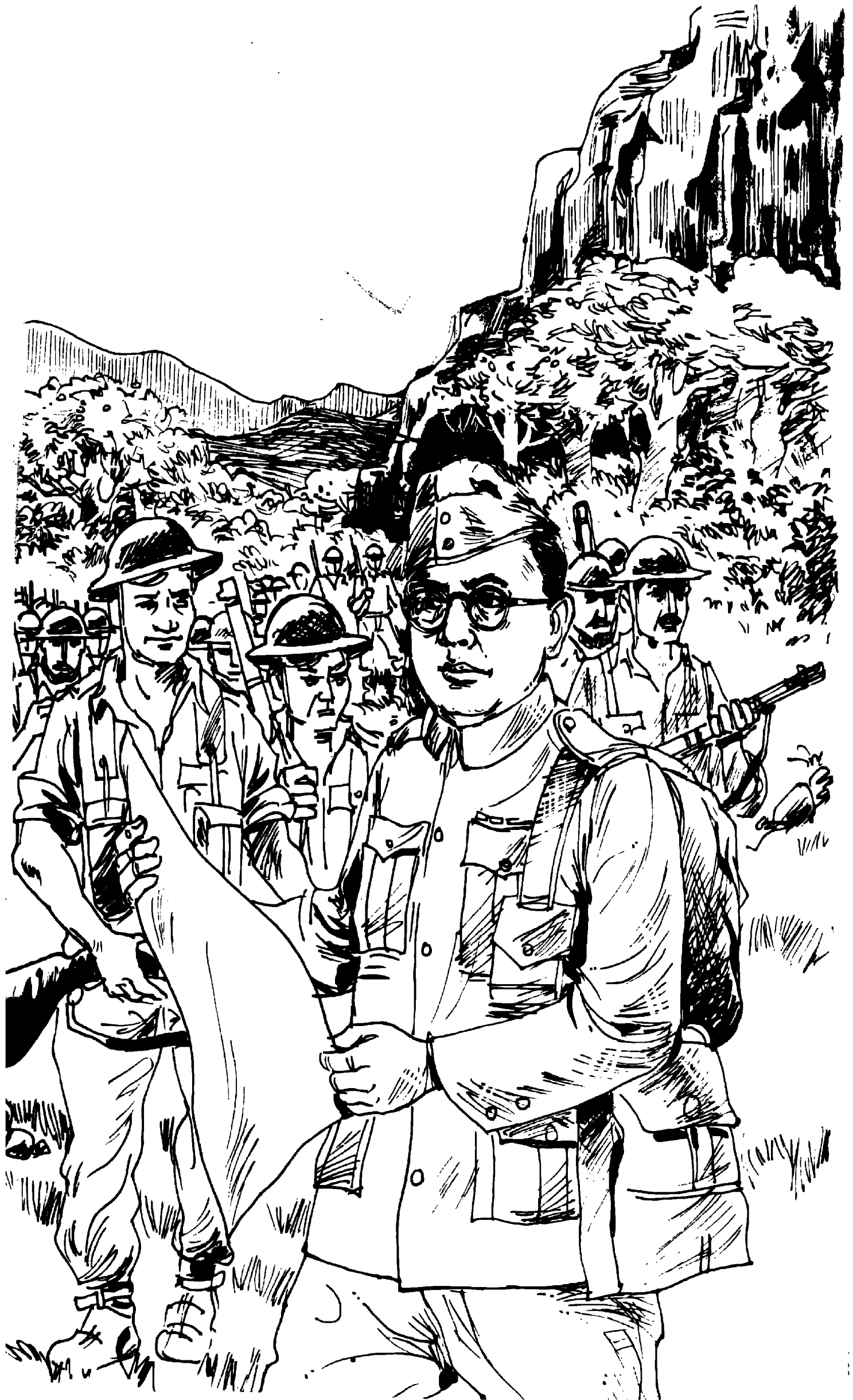
ने उनका स्वागत किया।

अंग्रेजी सरकार ने आजाद हिंद फौज के कई अधिकारियों और सैनिकों को गिरफ्तार कर लिया था। अंग्रेजी सरकार ने आजाद हिंद फौज के तीन अधिकारियों—शाह नवाज, गुरदयाल सिंह ढिल्लन और प्रेम कुमार सहगल पर मुकदमा चलाया। उनकी रिहाई के लिए देशव्यापी आंदोलन छिड़ा। सरकार को मजबूरन उन्हें छोड़ना पड़ा।

फरवरी 1946 में भारतीय नौसेना के कर्मचारियों ने बंबई में विद्रोह कर दिया। देश के कई हिस्सों के नौसेना कर्मचारियों ने उनके साथ सहानुभूति दिखाते हुए हड़ताल कर दी। कई फैक्टरियां बंद हो गईं। बंबई की जनता ने उनके समर्थन में विशाल प्रदर्शन किया। सरकार ने स्थिति से निपटने के लिए सेना का सहारा लिया।

कई जुझारू किसान संघर्षों की शुरुआत भी इस समय में हुई। भूमि सुधार के लिए मालाबार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र में किसानों के संघर्ष हुए। 1945-46 में मजदूर आंदोलन में भी पैनापन आया। शायद ही कोई औद्योगिक क्षेत्र ऐसा होगा जहां मजदूरों ने हड़ताल न की हो। और भी कई तरह के संघर्ष, हड़ताल और प्रदर्शन इस समय में हुए। कई स्थानों पर तो पुलिस और सरकारी कर्मचारियों ने भी हड़तालें कीं। हैदराबाद-त्रावणकोर और कश्मीर की रियासतों में भी जन संघर्ष हुए।

इन सारी घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया था कि भारत की जनता अब अंग्रेजी शासन को बर्दाश्त करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं है। यह बात अंग्रेजी सरकार की समझ में भी अच्छी तरह से आ गई थी और उन्होंने भारत छोड़ने का फैसला भी कर लिया। अभी तक जन संघर्षों से निपटने के लिए सरकार ने पुलिस और सेना का सहारा लिया था। पुलिस और सेना के अधिकतर कर्मी भारतीय ही थे। सरकार को

डर था कि ये भारतीय सिपाही अपने ही लोगों पर गोलियां चलाने से इंकार न कर दें।

भारत को 15 अगस्त 1947 को आजादी मिली। सारा देश खुशी से झूम उठा। यह आजादी करोड़ों भारतीयों के अथक प्रयासों और त्याग का परिणाम थी। देशभक्तों की कुर्बानी आखिरकार रंग लाई।

लेकिन दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के स्वच्छ और स्वर्णिम आकाश पर विभाजन के काले बादलों की छाया भी थी। देश को स्वतंत्रता तो मिली थी लेकिन दो हिस्सों–भारत और पाकिस्तान में। देश का बंटवारा भी हो गया था। राष्ट्रीय आंदोलन सांप्रदायिकता के बढ़ते उभार को रोकने में असफल रहा था। 1946-47 में उत्तरी और पूर्वी भारत में बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे। मजबूर होकर राष्ट्रवादी नेताओं को इस दावानल के आगे झुकना पड़ा और उन्होंने देश का विभाजन स्वीकार कर लिया।

14 अगस्त की रात को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने देश की जनता के लिए एक स्मरणीय संदेश प्रसारित किया। उन्होंने कहा, "बरसों पहले हमने किस्मत से एक बाजी लगाई थी, एक इकरार किया था और अब वह वक्त आ पहुंचा है, जब पूरी तौर से नहीं, फिर भी काफी हद तक हम उस वायदे को पूरा करेंगे। जब आधी रात का गजर बजेगा, जब सारी दुनिया सोई हुई होगी, भारत एक नई जिंदगी और आजादी हासिल करेगा। इतिहास में एक वक्त आता है, हालांकि ऐसा वक्त बहुत कम आता है जब एक युग का अंत होता है और मुल्क की आत्मा बहुत दिनों तक दबी रहने के बाद बोल उठती है। इस अहम मौके पर यह मुनासिब होगा कि हम हिंदुस्तान और उसकी जनता को और उससे भी बढ़कर मानवता की खिदमत में अपने को समर्पित करने का संकल्प करें।"

भारतीय नेता और जनता अच्छी तरह से समझते थे कि स्वतंत्रता प्राप्ति एक लंबे सफर का अंत नहीं बल्कि उसकी शुरुआत है। गरीबी उन्मूलन, निरक्षरता की समाप्ति और सामाजिक न्याय इस लंबे सफर के कुछ महत्वपूर्ण पड़ाव थे। यह लंबा सफर आज भी जारी है। लेकिन हमारा स्वतंत्रता संग्राम हमारे लिए एक ऐसी मजबूत और महान विरासत है, जो एक सशक्त, समृद्ध और न्याय संगत भारत के लिए आधारशिला के समान है।

●●●